बिजली (पावर) के बदलते ढाँचे
Changing Power Structures

रोहित चंद्रा
Rohit Chandra
October 21, 2013

एक सप्ताह पहले ही फ़ैलिन नामक चक्रवात ने ओडिशा और आंध्र प्रदेश से गुज़रते हुए तबाही मचा दी थी. यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि ग्रामीण क्षेत्रों में 200 कि.मी.की रफ़्तार से चलने वाली हवाओं ने समुद्रतटीय इलाकों में बिजली के पारेषण की ढाँचागत सुविधाओं को काफ़ी प्रभावित किया है. बिजली का वितरण करने वाले हज़ारों खंभों और हज़ारों किलोमीटर तक उनकी तारों के उखड़ जाने के कारण विशेष तौर पर ओडिसा के कुछ ज़िले बिजली की भारी कमी से अभी भी जूझ रहे हैं. परंतु फ़ैलिन के दौरान जिस संभावित तबाही से हम बच गये हैं, वह है बड़े स्तर पर ग्रिड फ़ेल होने की तबाही. अगर ग्रिड की नियमित निगरानी और प्रबंधन न किया गया होता तो यह तबाही आसानी से सब कुछ बर्बाद कर देती. जुलाई,2012 में उत्तरी और पूर्वी ग्रिड के ठप्प हो जाने के कारण जनता के भारी आक्रोश के बाद भारतीय बिजली प्रबंधन प्रणाली की अनेक कमियाँ सामने आ गयी थीं. इसके विपरीत फ़ैलिन के समय बिजली के क्षेत्र से जुड़ी एजेंसियों और सरकारी विभागों के बीच आपसी सहयोग का जो माहौल दिखायी दिया, वह बहुत संतोषजनक था, भले ही यह सहयोग अस्थायी था.

फ़ैलिन की तैयारी में नयी दिल्ली के बिजली मंत्रालय और ओडिसा व आंध्र प्रदेश की राज्य सरकारों और राज्य स्तर के सार्वजनिक उपक्रमों और केंद्रीय उपक्रमों (पावर ग्रिड, एनटीपीसी और एनएचपीसी) के बीच बड़े पैमाने पर समन्वय का कार्य किया गया. दिल्ली में राष्ट्रीय बिजली निगरानी केंद्र की समाप्ति और राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण के सहयोग से ग्रिड की स्थिरता बनाये रखने के लिए बिजली के उत्पादन और खपत के बीच संतुलन बनाये रखने, क्षतिग्रस्त पारेषण नैटवर्क की मरम्मत के लिए कर्मचारियों की व्यवस्था करने और प्रभावित क्षेत्रों में बिजली की सप्लाई बहाल करने के लिए योजनाबद्ध प्रयास किये गये. यही मुख्य कारण है कि चक्रवात आने के एक सप्ताह के अंदर ही दोनों राज्यों में चक्रवात आने के पहले का 85 प्रतिशत लोड फिर से ऑन लाइन बहाल कर दिया गया.

ग्रिड प्रबंधन एक खास तरह का विज्ञान है. चूँकि भारत के विभिन्न क्षेत्रीय ग्रिड पिछले बीस वर्षों में मुख्यतः पावर ग्रिड द्वारा किये गये प्रयासों के कारण परस्पर समन्वित होने लगे हैं, इसलिए विशालकाय भौगोलिक क्षेत्रों के माध्यम से ग्रिड की अस्थिरता की संभावना भी तेज़ी से बढ़ने लगी है. इसे रोकने के लिए क्षेत्रीय (राज्य स्तर की युटिलिटीज़ और एसईबीज़) और राष्ट्रीय (पीओएसओसीओ) स्तर के सिस्टम ऑपरेटर उत्पादित बिजली और लोड की मात्रा (कुल पावर उपयोग) को उसी बिजली की खपत करते हुए लगातार संतुलित करने का प्रयास कर रहे हैं. रियल टाइम के अंदर संतुलन की प्रक्रिया को कार्यान्वित करने के सबसे अधिक आम उपाय यही हैं कि बिजली संयंत्रों को यह बताया जाए कि वे अपने जनरेशन आउटपुट (अपवर्ड या डाउनवर्ड) को समायोजित करें या ग्रिड (जिसके कारण अक्सर लोडशेडिंग होती है) से लोड को कनेक्ट या डिसकनेक्ट करें. जब यह संतुलन विफल होता है तो ट्रांसमिशन सिस्टम के कुछ भागों में अक्सर फ़्लक्चुएशन होने लगता है. अगर इसे रोका नहीं जाता तो ये फ़्लक्चुएशन उसके ज़रिये सब जगह फैल सकता है और सारे ग्रिड को भी

अस्थिर कर सकता है. न केवल क्षेत्रीय ग्रिडों को अपने सिस्टम को प्रबंधित करने की आवश्यकता है, बल्कि उन्हें आपस में और राष्ट्रीय लोड डिस्पैच सैंटर के साथ समन्वय बनाये रखने की भी आवश्यकता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि अस्थिरता ग्रिडों के बीच पास न हो सके. वास्तव में पिछली गर्मियों के दिनों में यही सब कुछ हुआ था.

जुलाई 2012 के ब्लैक आउट के बाद ग्रिड की विफलता के कारणों पर बहुत तरह के अनुमान लगाये गये थे. कुछ अनुमान तो ऐसे थे कि जिनके अनुसार संस्थाओं का स्पष्टीकरण माँगा जाना चाहिए था और कुछ अनुमानों के अनुसार मात्र तकनीकी स्पष्टीकरण अपेक्षित था. कई लोगों ने इस विफलता के लिए ज़्यादा बिजली लेने वाले विभिन्न राज्यों पर दोषारोपण किया, लेकिन एक ऐसी समस्या है जिसे पिछले दस साल से सिस्टम ऑपरेटर झेलते रहे हैं. अंततः यह विफलता तीन घटनाओं तक ही सीमित रह गयी. पहली घटना है ग्वालियर-आगरा ट्रांसमिशन कोरिडोर की, जो पश्चिमी ग्रिड से अधिक बिजली लेकर उत्तरी ग्रिड को पहुँचाता है. इस कोरिडोर को सभी सिस्टम ऑपरेटरों को सूचित किये बिना ही पावर ग्रिड द्वारा अपग्रेड किया जा रहा था. दूसरी घटना उस समय हुई जब बार-बार होने वाली अस्थिरता का पता चला तो इस समस्या का समाधान खास तौर पर पश्चिमी ग्रिड में जनरेटर मँगवाकर उनके उत्पादन को अस्थायी तौर पर कमी करके किया जा सकता था. परंतु ऐसे ऑर्डर बहुत कम होते हैं जब जनरेटर काम नहीं करते और इसके कारण समस्या का रूप और भी गंभीर हो जाता है. अंततः जैसे ही फ़्लक्चुएशन उत्तरी और पश्चिमी ग्रिडों में बार-बार होने लगे थे तो सबस्टेशनों को चाहिए था कि वे रिलेज़ को स्वचालित कर देते ताकि बार-बार होने वाले फ़्लक्चुएशन या वोल्टेज की गिरावट का पता लगाया जा सकता और अपने-आप ही ग्रिड के कई भाग कट-ऑफ़ हो जाते और डिस्टरबैंस आइज़ोलेट हो जाता. अधिकांश राज्यों ने ऐसे उपकरण ले तो लिये हैं, लेकिन उन्हें अभी इनस्टॉल या सक्रिय नहीं किया है.

ये तीन घटनाएँ कुछ ऐसी महत्वपूर्ण समस्याओं को उजागर करती हैं जिन्होंने भारत के बिजली उद्योग को जकड़ रखा है. पहली समस्या है बिजली क्षेत्र के संघवाद की और उससे जुड़े बिजली के संबंधों की. अपने को एक दूसरे से श्रेष्ठ समझने के कारण राज्य और केंद्र स्तर के पदाधिकारियों और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों (पीएसयू) के कर्मचारियों के बीच परस्पर संवाद होना बहुत कठिन है. कुछ ऐसा परंपरागत अक्खड़पन है जो पदानुक्रम में उच्च पदस्थ अधिकारियों के साथ-साथ चलता है. जब तक यह बाधा दूर नहीं होती तब तक किसी भी प्रकार का दीर्घकालीन समन्वय स्थापित करना बहुत ही कठिन होगा. दूसरी समस्या है, ग्रिड पर इन आदेशों को लागू कराना और सिस्टम ऑपरेटरों के आदेशों की अवहेलना करने वाले दोषी कर्मचारियों को दंडित करना. चूँकि डिस्कॉम और जनरेटर बिजली प्रणाली के अंतर्गत अधिकार की परंपरागत सीटें हैं, इसलिए सिस्टम ऑपरेटर की भूमिका की अक्सर अनदेखी हो जाती है. लोड डिसपैच केंद्रों को गौरवपूर्ण लेखा निकाय माना जाता है और सीईआरसी मुख्यतः शुल्क संबंधी काम की देखरेख करता है. इसका अर्थ यह है कि ग्रिड की स्थिरता की ज़िम्मेदारी का काम वित्तीय मामलों की तुलना में दोयम दर्जे का माना जाता है. यही वह मुख्य कारण है कि आखिर क्यों लाभप्रद पावर प्लांट की तुलना में ग्रिड की स्थिरता के कारणों का समर्थन करने वाले तर्क की अनदेखी कर दी जाती है. अंततः रिलेज़ को इन्स्टॉल न कर पाना और कुछ न होकर मानवीय विफलता ही तो है. जैसा कि सूर्य सेठी कहते हैं, ‘‘बीमारी का मूल कारण बिजली जैसे प्रमुख आर्थिक क्षेत्रों में तकनीकी योग्यता रखने वाले और अनुभवी लोगों को अधिकार वाले पदों पर नियमित रूप में नियुक्त न कर पाने की विफलता ही है.’’

अब यह देखना बाकी है कि फ़ैलिन के कारण प्रदर्शित समन्वय की भावना वस्तुतः दीर्घकालीन संस्थागत परिणाम देने में सक्षम है या नहीं. एक आपदा से निबटना एक बात है, लेकिन रिले इन्स्टॉलेशन और ट्रांसमिशन लाइन को अपग्रेड करते समय नज़दीकी ग्रिडों को सूचित करने जैसे नियमित कामों को करना दूसरी बात है, खास तौर पर तब जब इससे आपके सुर्खियों में आने की कोई संभावना नहीं होती और न ही इसमें किसी प्रकार की कोई तात्कालिकता होती है. इन क्षेत्रों में निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ने से बिजली उत्पादन और वितरण में निवेश की संभावनाएँ बढ़ी हैं, लेकिन ट्रांसमिशन के क्षेत्र में निवेश पिछड़ रहा है. राज्य की युटिलिटीज़ के दीवालिया होने के कारण समस्या और गंभीर हो गयी है. बिजली मंत्रालय द्वारा बिजली के वित्तीय पुनर्निर्माण पैकेज से कुछ हद तक समस्या के निवारण में कुछ मदद ज़रूर मिल सकती है, लेकिन इसके साथ ही राज्य के ट्रांसमिशन सिस्टम के ऑपरेशन और अनुरक्षण को लेकर कुछ शर्तें भी जोड़ी जानी चाहिए. खास तौर पर ऐसे राज्यों के लिए जो इस बोझ को उतारने में बहुत सुस्त हैं, पावर ग्रिड पर अधिकाधिक बोझ लादकर शहरी उपभोक्ताओं को बिजली सप्लाई करने की बात सहन नहीं की जानी चाहिए.

रोहित चंद्रा हार्वर्ड विश्वविद्यालय के कैनेडी स्कूल ऑफ़ गवर्नमेंट में ऊर्जा नीति का अध्ययन करने वाले डॉक्टरेट प्रत्याशी हैं. उनसे rchandra@fas.harvard.edu *पर संपर्क किया जा सकता है.*

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, भारत सरकार <malhotravk@hotmail.com>